पुरूषोतम सुपुत्र तुलसीराम बड़वेक

बनाम

अनिल और अन्य

2 मई, 2018

न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा और न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 85 – माध्यस्थम् के लिए निर्देश – 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के काफी समय पश्चात् निष्पादित भागीदारी करार में विवादों को माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार, माध्यस्थम् को निर्देशित करने का अनुबंध – 1996 के नए अधिनियम के प्रवर्तन में आने के पश्चात्, भागीदारी करार में विवादों को 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् को निर्देशित करने संबंधी अनुबंध का कोई महत्व नहीं होगा किन्तु करार में 1940 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में गलत निर्देश करने के कारण संपूर्ण करार अविधिमान्य नहीं हो जाएगा ।

प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी और प्रत्यर्थियों के बीच तारीख 9 नवम्बर, 2005 का एक भागीदारी करार हुआ था । उक्त भागीदारी करार के खंड 15 में यह अनुबंधित है कि भागीदारों के बीच इस विलेख के निर्वचन या भागीदारी कारबार से संसक्त किसी अन्य विषय के संबंध में कोई विवाद होने की दशा में, उसे भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा और मध्यस्थ का विनिश्चय अंतिम और सभी भागीदारों पर आबद्धकर होगा । अपीलार्थी ने भागीदारों के पक्ष में तारीख 28 दिसम्बर, 1996 को एक रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा भी निष्पादित किया था । प्रत्यर्थियों ने, अप्रैल, 2014 में, अपीलार्थी के विरुद्ध घोषणा, नुकसानी, लेखाओं और स्थायी व्यादेश के लिए ज्येष्ठ खंड सिविल न्यायाधीश के न्यायालय में सिविल वाद फाइल किया । अपीलार्थी ने सूचना की प्राप्ति के तुरंत पश्चात्, भागीदारी करार के उपर्युक्त खंड 15 को ध्यान में रखते हुए विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने हेतु माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । मामले का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उपर्युक्त खंड 15 अस्पष्ट है, यह कि

उसमें इस संबंध में कोई निर्देश नहीं है कि मध्यस्थ कौन होना चाहिए, यह कि मध्यस्थ के चयन के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है और यह कि यह विवाद 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अर्थान्तर्गत करार की विषयवस्तु गठित नहीं करता है । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय में सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके मामले को आगे बढ़ाया गया । उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि सुसंगत खंड से यह उपदर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच होने वाले विवादों को भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा हालांकि भागीदारी करार 1996 के अधिनियम के अधिनियमित होने के काफी समय पश्चात् किया गया था । उच्च न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय की इन पूर्व मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया कि पक्षकार नए अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व भी और जब कि पुराना अधिनियम अब भी लागू होता है, नए अधिनियम के लागू होने के बारे में करार कर सकते हैं । धारा 85(2)(क) की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जो पक्षकारों को इस प्रकार करार करने से वर्जित करती हो । तथापि, उसमें ऐसा वर्जन है कि वे नए अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात्, जब कि पुराने अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ न हुई हों हालांकि माध्यस्थम् करार पुराने अधिनियम के अधीन हो, पुराने अधिनियम के लागू होने के बारे में करार नहीं कर सकते हैं और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने तक 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ नहीं हुई थीं तो उन्हें उसके पश्चात् आरंभ नहीं किया जा सकता था । इसके अलावा, यह मत व्यक्त किया गया है कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में करार करने के संबंध में वर्जन है । उच्च न्यायालय ने अपीलाधीन निर्णय द्वारा इस चुनौती को अस्वीकार कर दिया और उक्त सिविल पुनरीक्षण को खारिज कर दिया । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सही दृष्टिकोण अनुकल्पी विवाद समाधान की स्कीम को कार्यान्वित करने संबंधी उद्देश्य का संवर्धन करना होगा । इस निष्कर्ष पर पहुंचना अतिश्योक्तिपूर्ण होगा कि उसमें कोई भी माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के लागू होने के प्रयोजनों के लिए जो कुछ तात्विक है वह पक्षकारों के बीच विवादों को माध्यस्थम् को निर्देशित करने का करार करना है । यदि ऐसा कोई माध्यस्थम् करार

होता है जो कि 1996 के अधिनियम की धारा 7 की अपेक्षाओं को पूरा करता है और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ हो गई है तो मामला पूर्णतः 1996 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगा । माध्यस्थम् करार में 1940 के अधिनियम के प्रति किसी निर्देश का कोई महत्व नहीं होगा और वह मामला पक्षकारों के मूलभूत आशय से संगत 1996 के अधिनियम के निबंधनानुसार ही माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा, जैसा कि विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने संबंधी किए गए माध्यस्थम् करार से प्रत्यक्ष है । इस दृष्टि से उच्च न्यायालय का यह मत व्यक्त करना सही नहीं था कि प्रस्तुत मामले में बिल्कुल भी कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । ऐसी स्थितियों में, जहां सुसंगत खंड में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों" के लागू होने के प्रतिनिर्देश किया गया है, वहां धारा 85(2)(क) के बल पर उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों की बाबत, जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रारंभ नहीं हुई हैं, शासित करने वाले उपबंध केवल 1996 के अधिनियम के उपबंध ही होंगे । इसी तर्क के आधार पर यदि किसी ऐसे माध्यस्थम् करार में, जो कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् किया गया है, लागू होने वाले उपबंधों के बारे में भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम या 1940 के अधिनियम के अधीन वाले उपबंधों के प्रतिनिर्देश किया गया है तो ऐसा अनुबंध निष्प्रभावी होगा और मामला 1996 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन शासित होना चाहिए । 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में किया गया गलत निर्देश या वर्णन संपूर्ण माध्यस्थम् करार को अविधिमान्य नहीं बना देगा । ऐसे अनुबंध को 1996 के अधिनियम की धारा 85 के प्रकाश में पढ़ा जाना होगा और ऐसे संबंध को शासित करने वाले सिद्धांत 1996 के अधिनियम के अधीन और उसके अनुरूप होने चाहिएं । प्रस्तुत मामले में 1996 के अधिनियम की धारा 7 में यथा अनुबंधित "माध्यस्थम् करार" की अपेक्षाओं की पूर्णतः पूर्ति हो गई है और न ही ऐसा कोई सुझाव दिया गया है कि वह करार असम्यक् प्रभाव, कपट, प्रपीड़न या दुर्व्यपदेशन के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली किन्हीं परिस्थितियों के कारण दूषित हो गया है । इन परिस्थितियों में, प्रयास यह किया जाना चाहिए कि विवादों का अनुकल्पी विवाद समाधान प्रक्रिया द्वारा समाधान करने संबंधी पक्षकारों के आशय को आगे बढ़ाया जाए । अतः, उच्च न्यायालय ने पूर्णतः त्रुटि कारित की है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर की जाती है । इस

मामले पर विचारण न्यायालय द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 8 के निबंधनानुसार कार्यवाही की जाएगी । पक्षकार, माध्यस्थम् करार को प्रभावशील बनाने के लिए तारीख 14 मई, 2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे । (पैरा 16, 17 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	ए. आई. आर. 2006 पटना 1 : **राजन कुमार वर्मा और एक अन्य** बनाम **सच्चिदानंद सिंह** ;	5,18
[2000]	(2000) 6 एस. सी. सी. 359 : **कुन्हयाम्मद और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य** ;	18
[1999]	(1999) 9 एस. सी. सी. 334 : **थाइसेन स्टालुनियन जी. एम. बी. एच.** बनाम **स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड** ;	5,14,,15
[1996]	(1996) 6 एस. सी. सी. 716 : **एम. एम. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **स्टरलाइट इंडस्ट्रीज़ (इंडिया) लिमिटेड** ;	12,13,16,17,18
[1986]	(1986) 4 एस. सी. सी. 146 : **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ।	18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 4664.

2015 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 88 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के तारीख 10 दिसम्बर, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री चिराग एम. श्रॉफ, सुश्री नेहा सांगवान और सुश्री संजना नांगिया

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अमोल निर्मलकुमार सूर्यवंशी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित ने दिया ।

न्या. ललित – इजाजत दी जाती है ।

2. इस अपील में 2015 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 88 में मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ द्वारा अपने तारीख 10 दिसम्बर, 2015 के निर्णय और आदेश द्वारा यथा अभिपुष्ट अपीलार्थी द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे संक्षेप में "1996 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 8 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकार किए जाने को चुनौती दी गई है ।

3. अपीलार्थी और प्रत्यर्थियों के बीच तारीख 9 नवम्बर, 2005 का एक भागीदारी करार हुआ था । उक्त भागीदारी करार का खंड 15 निम्नलिखित रूप में है :–

> "15. यह कि भागीदारों के बीच इस विलेख के निर्वचन या भागीदारी कारबार से संसक्त किसी अन्य विषय के संबंध में कोई विवाद होने की दशा में, उसे भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा और मध्यस्थ का विनिश्चय अंतिम और सभी भागीदारों पर आबद्धकर होगा ।"

4. अपीलार्थी ने भागीदारों के पक्ष में तारीख 28 दिसम्बर, 1996 को एक रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा भी निष्पादित किया था । प्रत्यर्थियों ने, अप्रैल, 2014 में, अपीलार्थी के विरुद्ध घोषणा, नुकसानी, लेखाओं और स्थायी व्यादेश के लिए ज्येष्ठ खंड सिविल न्यायाधीश, भंदारा के न्यायालय में 2014 का विशेष सिविल वाद सं. 16 फाइल किया । अपीलार्थी ने, सूचना की प्राप्ति के तुरंत पश्चात्, भागीदारी करार के उपर्युक्त खंड 15 को ध्यान में रखते हुए विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने हेतु 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । मामले का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 5 जनवरी, 2015 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को नामंजूर कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उपर्युक्त खंड 15 अस्पष्ट है, यह कि उसमें इस संबंध में कोई निर्देश नहीं है कि मध्यस्थ कौन होना चाहिए, यह कि मध्यस्थ के चयन के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है और यह कि यह विवाद 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अर्थान्तर्गत करार की विषयवस्तु गठित नहीं करता है ।

5. अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय में 2015 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 88 फाइल करके मामले को आगे बढ़ाया गया । उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि सुसंगत खंड से यह उपदर्शित होता है

कि पक्षकारों के बीच होने वाले विवादों को भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (जिसे संक्षेप में "1940 का अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा हालांकि भागीदारी करार 1996 के अधिनियम के अधिनियमित होने के काफी समय पश्चात् किया गया था । उच्च न्यायालय ने **थाइसेन स्टालुनियन जी. एम. बी. एच.** बनाम **स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के पैरा 35 के एक भाग और **राजन कुमार वर्मा और एक अन्य** बनाम **सच्चिदानंद सिंह**[2] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए पैरा 6 और पैरा 7 में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

> "उच्चतम न्यायालय ने थाइसेन स्टालुनियन जी. एम. बी. एच. (उपर्युक्त) वाले मामले में अपने निर्णय के पैरा 35 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है –
>
> > '35. पक्षकार नए अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व भी और जब कि पुराना अधिनियम अब भी लागू होता है, नए अधिनियम के लागू होने के बारे में करार कर सकते हैं । धारा 85(2)(क) की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जो पक्षकारों को इस प्रकार करार करने से वर्जित करती हो । तथापि, उसमें ऐसा वर्जन है कि वे नए अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात्, जब कि पुराने अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ न हुई हों हालांकि माध्यस्थम् करार पुराने अधिनियम के अधीन हो, पुराने अधिनियम के लागू होने के बारे में करार नहीं कर सकते हैं ।'
>
> उच्चतम न्यायालय की उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों से यह दृष्टव्य है कि यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने तक 1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियां आरंभ नहीं हुई थीं तो उन्हें उसके पश्चात् आरंभ नहीं किया जा सकता था । इसके अलावा, यह मत व्यक्त किया गया है कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में करार करने के संबंध में वर्जन है ।

---

[1] (1999) 9 एस. सी. सी. 334.

[2] ए. आई. आर. 2006 पटना 1.

राजन कुमार वर्मा (उपर्युक्त) वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया समरूप मत, उच्चतम न्यायालय के समक्ष उसकी चुनौती को अस्वीकार किए जाने के कारण कायम होता है ।"

इस प्रकार उच्च न्यायालय ने अपने अपीलाधीन निर्णय द्वारा चुनौती को अस्वीकार कर दिया और उक्त सिविल पुनरीक्षण खारिज कर दिया ।

6. इस अपील के समर्थन में, विद्वान् अधिवक्ता श्री चिराग एम. श्रॉफ ने इस प्रकार निवेदन किया :–

(क) तारीख 9 नवम्बर, 2005 के भागीदारी विलेख में 1940 के अधिनियम के प्रति निर्देश को आवश्यक रूप से करार पर हस्ताक्षर करने की तारीख को यथा-प्रचलित माध्यस्थम् प्रक्रिया को निर्देशित करना होगा ।

(ख) 1940 के अधिनियम का उल्लेख करने से पक्षकारों का यह आशय विफल नहीं हो जाएगा कि विवाद समाधान प्रक्रिया के रूप में माध्यस्थम् का सहारा लिया जाएगा ।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री अमोल निर्मलकुमार सूर्यवंशी ने यह निवेदन किया कि यह प्रश्न कि पक्षकारों के बीच जो संबंध है, उसे 1996 का अधिनियम या 1940 का अधिनियम शासित करेगा, इतना मूलभूत था कि उस निमित्त की गई गलतियों से संपूर्ण माध्यस्थम् खंड ही अविधिमान्य हो जाएगा और इस प्रकार निचले न्यायालयों का अपीलार्थी द्वारा किए गए निवेदनों को नामंजूर करना न्यायोचित था ।

8. प्रस्तुत मामले में, यद्यपि भागीदारी करार 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् किया गया था तथापि, सुसंगत खंड में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् के प्रति निर्देश किया गया है" । प्रत्यर्थी का पक्षकथन यह नहीं है कि पक्षकारों के बीच किया गया करार कपट, प्रपीड़न, अनुचित प्रभाव या दुर्व्यपदेशन के कारण किसी त्रुटि से ग्रस्त था । तथापि, जो कुछ अनुमानित है वह यह है कि 1940 के अधिनियम के निबंधनानुसार माध्यस्थम् के प्रति निर्देश एक ऐसी मूलभूत गलती है जिससे संपूर्ण माध्यस्थम् खंड अविधिमान्य हो जाएगा और इस प्रकार माध्यस्थम् के प्रति बिल्कुल भी कोई निर्देश नहीं हो सकेगा ।

9. "माध्यस्थम् करार" पद को 1996 के अधिनियम की धारा 7 में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

"7. **माध्यस्थम् करार** – (1) इस भाग में "माध्यस्थम् करार" से पक्षकारों द्वारा ऐसे सभी या कतिपय विवाद माध्यस्थम् के लिए निवेदित करने के लिए किया गया करार अभिप्रेत है जो परिनिश्चित विधिक संबंध, चाहे संविदात्मक हो या न हो, की बाबत उनके बीच उद्भूत हुए हैं या हो सकते हैं ।

(2) माध्यस्थम् करार किसी संविदा में माध्यस्थम् खंड के रूप में या किसी पृथक् करार के रूप में हो सकता है ।

(3) माध्यस्थम् करार लिखित रूप में होगा ।

(4) माध्यस्थम् करार लिखित रूप में है, यदि वह –

(क) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित किसी दस्तावेज में ;

(ख) पत्रों के आदान-प्रदान, टैलेक्स, तार या दूरसंचार के ऐसे अन्य साधन में (जिसके अंतर्गत इलैक्ट्रानिक साधनों के माध्यम से संचार भी है) जो करार के अभिलेख की व्यवस्था करते हैं; या

(ग) दावे और प्रतिरक्षा के कथनों के आदान-प्रदान में, जिनमें करार की विद्यमानता का एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा उससे इनकार नहीं किया गया है,

अंतर्विष्ट हैं ।

(5) माध्यस्थम् खंड वाले किसी दस्तावेज़ के प्रति किसी संविदा में निर्देश माध्यस्थम् करार का गठन करेगा यदि संविदा लिखित रूप में है और निर्देश ऐसा है जो उस माध्यस्थम् खंड को संविदा का भाग बनाता है ।"

10. इस प्रकार, किसी माध्यस्थम् खंड के लिए मूलभूत अपेक्षाएं ये हैं – (क) पक्षकारों के बीच ऐसे सभी या कतिपय विवाद माध्यस्थम् के लिए निवेदित करने के लिए किया गया करार, जो परिनिश्चित विधिक संबंध की बाबत उनके बीच उद्भूत हुए हैं या भविष्य में उद्भूत हो सकते हैं ; (ख) ऐसा करार लिखित में होगा । दूसरी अपेक्षा दस्तावेजों या संचार के आदान-प्रदान से स्पष्ट हो सकती है । धारा 7 में यथा अनुबंधित ये अपेक्षाएं

निश्चित रूप से प्रस्तुत मामले में पूरी हो गई हैं । तथापि, प्रश्न यह शेष है कि क्या करार में 1940 के अधिनियम के प्रति निर्देश का कोई प्रभाव होगा । इस प्रक्रम पर हम 1996 के अधिनियम की धारा 85 के उपबंधों पर विचार कर सकते हैं और वह धारा निम्नलिखित रूप में है :–

> "**85. निरसन और व्यावृत्ति** – (1) माध्यस्थम् (प्रोटोकोल और अभिसमय) अधिनियम, 1937 (1937 का 6), माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का 10) और विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 (1961 का 45) इसके द्वारा निरसित किए जाते हैं ।
>
> (2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, –
>
> (क) उक्त अधिनियमितियों के उपबंध, ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में, जो इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व आरंभ हुई थीं तब तक लागू होंगे जब तक कि पक्षकार द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो किन्तु यह अधिनियम ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में लागू होगा जो इस अधिनियम के प्रवृत्त होने पर या उसके पश्चात् प्रारंभ हुई हैं ;
>
> (ख) उक्त अधिनियमितियों के अधीन बनाए गए सभी नियम और प्रकाशित अधिसूचनाएं उस विस्तार तक जिस तक वे इस अधिनियम के विरुद्ध नहीं हैं, क्रमशः इस अधिनियम के अधीन की गई या जारी की गई समझी जाएंगी ।"

11. धारा 85 की उपधारा (1) द्वारा तीन अधिनियमितियों को निरसित कर दिया गया है, जिनके अंतर्गत 1940 का अधिनियम भी है । उपधारा (2) में अन्य बातों के साथ-साथ यह अनुबंधित है कि ऐसे निरसन के होते हुए भी, निरसित अधिनियमित, अर्थात् 1940 का अधिनियम, ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में, जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पूर्व आरंभ हुई थीं तब तक लागू होगा जब तक कि पक्षकार द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो । उक्त उपधारा (2) के प्रथम खंड के दूसरे भाग में इसके आगे यह अनुबंधित किया गया है कि ऐसे निरसन के होते हुए भी 1996 के अधिनियम के उपबंध ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में लागू होंगे जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने पर या उसके पश्चात् प्रारंभ हुई हैं ।

12. **एम. एम. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **स्टरलाइट इंडस्ट्रीज़**

(इंडिया) लिमिटेड[1] वाले मामले में माध्यस्थम् करार 1996 के अधिनियम के प्रारंभ होने से पूर्व की तारीख का था । तथापि, माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1996 के प्रवृत्त होने के पश्चात् प्रारंभ हुई थीं और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा पैरा 11 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 1996 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे । इसके अलावा, माध्यस्थम् खंड में दो मध्यस्थों का नियुक्त किया जाना अनुध्यात था और यह प्रश्न भी उद्भूत हुआ कि क्या मध्यस्थों की नियुक्ति प्रश्नगत खंड के अनुरूप होनी थी या 1996 के अधिनियम के उपबंधों के निबंधनानुसार होनी थी । उक्त विनिश्चय के पैरा सं. 1, 4, 5, 8, 10, 11, 12 और 13 को सुगम निर्देश के लिए इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "1. विनिश्चयार्थ अंतर्वलित प्रश्न यह है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे संक्षेप में "नया अधिनियम" कहा गया है) का प्रस्तुत मामले में नए अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किए गए माध्यस्थम् करार पर क्या प्रभाव है । पक्षकारों के बीच हुए तारीख 14 दिसम्बर, 1993 को हुए करार का खंड 7 निम्नलिखित रूप में है –
>
> > "7. इस करार की संरचना, इसके अर्थान्वयन और प्रवर्तन या प्रभाव के अधीन या के कारण या के संबंध में उद्भूत होने वाला कोई प्रश्न या विवाद या इस करार के भंग की दशा में, विवादग्रस्त मामला मध्यस्थ को निर्देशित किया जाएगा । दोनों पक्षकार एक-एक मध्यस्थ नामनिर्दिष्ट करेंगे और मध्यस्थ निर्देश पर कार्यवाही करने से पूर्व एक अधिनिर्णायक नियुक्त करेंगे । मध्यस्थों का विनिश्चय या उनके सहमत न होने की दशा में, अधिनिर्णायक का विनिश्चय अंतिम और पक्षकारों पर आबद्धकर होगा । कार्यवाहियों के लिए भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध लागू होंगे । यथास्थिति, मध्यस्थ या अधिनिर्णायक, पक्षकारों की सहमति से पंचाट करने के लिए समय-समय पर समय बढ़ाने के लिए हकदार होगा । मध्यस्थ/अधिनिर्णायक एक सकारण पंचाट करेंगे । माध्यस्थम् का स्थान मुम्बई होगा ।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकित)

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् महान्यायवादी की दलील यह है

---

[1] (1996) 6 एस. सी. सी. 716.

कि ऐसा माध्यस्थम् करार, जिसमें सम संख्या में मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए उपबंध किया गया है, नए अधिनियम की धारा 10(1) के कारण एक विधिमान्य करार नहीं है और इसलिए ऐसे मामले में एकमात्र उपचार वाद द्वारा न कि माध्यस्थम् द्वारा उपलब्ध है । इस कारण, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि धारा 10 की उपधारा (2) लागू नहीं होती है चूंकि उपधारा (1) के अनुसार मध्यस्थों की संख्या अवधारित करने में कोई असफलता नहीं है । विद्वान् महान्यायवादी का एक अन्य तर्क यह था कि धारा 10, माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (जिसे संक्षेप में '1940 का अधिनियम' कहा गया है) की पहली अनुसूची के पैरा 2 से विचलन है, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> '2. यदि निर्देश सम संख्या वाले मध्यस्थों को किया जाता है तो मध्यस्थ अपनी-अपनी नियुक्ति की अंतिम तारीख से एक मास के अपश्चात् एक अधिनिर्णायक नियुक्त करेंगे ।'

5. प्रत्युत्तर में, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री दवे ने यह दलील दी कि नए अधिनियम की धारा 10 और 1940 के अधिनियम के तत्स्थानी उपबंध के बीच ऐसी कोई असंगति नहीं है, दोनों उपबंध सारवान् रूप से एकसमान हैं । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि नए अधिनियम के उपबंधों का अर्थान्वयन अनुकल्पी विवाद समाधान की स्कीम को कार्यान्वित करने संबंधी उद्देश्य के संवर्धन के लिए किया जाना चाहिए; और नए अधिनियम का अर्थान्वयन पूर्ववर्ती माध्यस्थम् करारों के प्रवर्तन को समर्थ बनाने के लिए किया जाना चाहिए । इस बात पर जोर दिया गया था कि चूंकि प्रत्येक पक्षकार ने अपना-अपना मध्यस्थ नामनिर्देशित कर दिया था इसलिए तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति धारा 11(3) के अनुसार की जानी थी और ऐसा करने में असफल रहने पर नए अधिनियम के अधीन पारिणामिक परिणाम लागू होंगे । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि मध्यस्थों की संख्या से संबंधित उपबंध एक मशीनरी उपबंध है और इससे माध्यस्थम् करार की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है जिसका अवधारण नए अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किया जाना है ।

8. धारा 7 की उपधारा (3) में यह अपेक्षित है कि माध्यस्थम् करार लिखित में होना चाहिए और उपधारा (4) में उस लेखन के प्रकार को वर्णित किया गया है । धारा 7 में ऐसी कोई बात नहीं है

जिससे माध्यस्थम् करार के भागस्वरूप मध्यस्थों की संख्या संबंधी अपेक्षा उपदर्शित होती हो । इस प्रकार, किसी माध्यस्थम् करार की विधिमान्यता उसमें विनिर्दिष्ट मध्यस्थों की संख्या पर निर्भर नहीं करती है । मध्यस्थों की संख्या के संबंध में धारा 10 में पृथक् रूप से उपबंध किया गया है जो कि माध्यस्थम् करार के कार्यकरण के लिए मशीनरी उपबंध का एक भाग है । अतः, यह स्पष्ट है कि ऐसा माध्यस्थम् करार, जिसमें मध्यस्थों की सम संख्या विनिर्दिष्ट की गई हो, नए अधिनियम के अधीन माध्यस्थम् करार को अविधिमान्य बनाने का कोई आधार नहीं हो सकता है, जैसी कि विद्वान् महान्यायवादी द्वारा दलील दी गई है ।

10. माध्यस्थम् खंड में यह उपबंधित है कि प्रत्येक पक्षकार एक मध्यस्थ नामनिर्देशित करेगा और दोनों मध्यस्थ इसके बाद निर्देश के संबंध में कार्यवाही करने से पूर्व एक अधिनिर्णायक नियुक्त करेंगे । धारा 11(3) में दोनों मध्यस्थों से यह अपेक्षा की गई है कि वे तीसरे मध्यस्थ या अधिनिर्णायक की नियुक्ति करें । इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रस्तुत मामले में माध्यस्थम् करार माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की पहली अनुसूची के पैरा 2 में अंतर्विष्ट विवक्षित शर्त के अनुरूप है, जिसमें उन मध्यस्थों से, जिनमें से एक-एक मध्यस्थ दोनों पक्षों में से प्रत्येक द्वारा नियुक्त किया गया हो, उनकी अपनी-अपनी नियुक्तियों की अंतिम तारीख से एक मास के अपश्चात् एक अधिनिर्णायक नियुक्त करने की अपेक्षा की गई है ।

11. प्रश्न यह है कि क्या नए अधिनियम में ऐसी कोई बात है जो ऐसे करार को अप्रवर्तनीय बनाती है ? हमें नए अधिनियम में ऐसा कोई संकेत प्रतीत नहीं होता है । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रस्तुत मामले में माध्यस्थम् कार्यवाही नए अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् आरंभ हुई थी और इसलिए उसे नया अधिनियम लागू होता है । माध्यस्थम् करार में इस शर्त को देखते हुए कि दोनों मध्यस्थ निर्देश के संबंध में कार्यवाही करने से पूर्व तीसरे मध्यस्थ या अधिनिर्णायक की नियुक्ति करेंगे, धारा 10 की उपधारा (1) की अपेक्षा पूरी हो जाती है और उसकी उपधारा (2) लागू नहीं होती है । जैसा कि इससे पूर्व कथन किया गया है, करार, अधिनियम की धारा 7 की अपेक्षा को पूरा करता है और इसलिए वह एक विधिमान्य माध्यस्थम् करार है । अतः, मध्यस्थों की नियुक्ति नए अधिनियम की धारा 11 द्वारा शासित होनी चाहिए ।

12. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दोनों पक्षकारों में से प्रत्येक पक्षकार ने अपना-अपना मध्यस्थ नियुक्त किया था, अर्थात् न्यायमूर्ति एम. एन. चंदूरकर (सेवानिवृत्त) और न्यायमूर्ति एस. पी. सपरा (सेवानिवृत्त), धारा 11(3) लागू होती थी और नियुक्त किए गए दोनों मध्यस्थों से पीठासीन मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए एक तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करना अपेक्षित था, जिसके न हो सकने पर उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा पदाभिहित किसी व्यक्ति या संस्था से यह अपेक्षित होगा कि वह नए अधिनियम की धारा 11(4)(ख) की अपेक्षानुसार तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करें । चूंकि धारा 11(3) में विहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है इसलिए धारा 11 में उपबंधित आगामी परिणाम अवश्य लागू होने चाहिएं ।

13. तद्नुसार, हम यह निदेश देते हैं कि नियुक्त किए गए दोनों मध्यस्थों के अपनी-अपनी नियुक्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करने में असफल रहने के कारण उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को नए अधिनियम की धारा 11(4)(ख) के अधीन तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति करनी है । उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दिए गए निदेश को इस आशय तक प्रतिस्थापित किया जाता है ।"

13. **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में एक नियुक्ति प्रक्रिया अनुध्यात की गई थी, जो कि 1996 के अधिनियम के उपबंधों के यथार्थतः अनुरूप नहीं थी और करार यह किया गया था – "कार्यवाहियों को भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध लागू होंगे" । इस प्रकार, 1940 के अधिनियम के उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया था । उक्त विनिश्चय का पठन करने पर यह दर्शित होता है कि जो कुछ निर्णायक था वह माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रारंभ होने की तारीख थी और यदि ऐसा प्रारंभ 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् था तो उस स्थिति को जो उपबंध शासित करेंगे वह 1996 के अधिनियम के उपबंध होंगे । नियुक्ति प्रक्रिया के बारे में भी यह निदेश दिया गया था कि वह 1996 के अधिनियम के अनुरूप होनी चाहिए । मूलभूत प्रश्न यह पाया गया था कि क्या 1996 के अधिनियम की धारा 7 के निबंधनानुसार लिखित में कोई माध्यस्थम् करार हुआ था । पैरा 5 में किए गए निवेदन को स्वीकार करने पर यह दर्शित होगा कि 1996 के अधिनियम का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि पूर्ववर्ती माध्यस्थम् करार के

प्रवर्तन को समर्थ बनाया जा सके ।

तर्कसम्मत रूप से, भले ही किसी विशेष मामले में, 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व किए गए करार में माध्यस्थम् के प्रति निर्देश 1940 के अधिनियम के निबंधनानुसार था और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व माध्यस्थम् कार्यवाहियां प्रारंभ नहीं हुई थी, तो भी केवल 1996 के अधिनियम के उपबंध ही ऐसी स्थिति को शासित करेंगे । ऐसे मामलों में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम" या "1940 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम्" के प्रति निर्देश करने का कोई परिणाम नहीं होगा और मामला तब भी 1996 के अधिनियम के अधीन शासित होगा । तब क्या इससे कोई अंतर पड़ेगा, यदि 1996 के अधिनियम के पश्चात् किए गए किसी करार में पक्षकारों द्वारा करार में किया गया निर्देश 1940 के अधिनियम के निबंधनानुसार माध्यस्थम् के लिए था ।

14. **थाइसेन** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन अपीलों पर एक-साथ विचार किया गया था । उन तीन अपीलों में से प्रथम अपील में, माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1940 के अधिनियम के अधीन तारीख 14 सितम्बर, 1995 को प्रारंभ हुई थीं और एकमात्र मध्यस्थ द्वारा तारीख 24 सितम्बर, 1997 को पंचाट किया गया था । तारीख 13 अक्तूबर, 1997 को पंचाट को न्यायालय का आदेश बनाने के लिए 1940 के अधिनियम की धारा 14 और 17 के अधीन एक याचिका फाइल की गई थी । इन कार्यवाहियों में, यह निवेदन करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया था कि चूंकि 1996 का अधिनियम 25 जनवरी, 1996 को प्रवर्तन में आ गया था इसलिए इस पंचाट के प्रवर्तन की बाबत वह लागू होगा । इन तथ्यों के संदर्भ में, जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था वह यह था कि क्या वह पंचाट अपने प्रवर्तन के लिए 1996 के अधिनियम द्वारा शासित होगा या क्या 1940 के अधिनियम के उपबंध लागू होंगे । दूसरे मामले में, 1996 के अधिनियम के प्रवर्तन में आने से पूर्व यूनाइटेड किंगडम में माध्यस्थम् कार्यवाहियां की गई थीं और तारीख 25 फरवरी, 1996 को लन्दन में पंचाट किया गया था तथा उसमें जो प्रश्न उद्भूत हुआ था, वह यह था कि क्या वह पंचाट अपने प्रवर्तन के लिए 1996 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा या विदेशी पंचाट अधिनियम द्वारा शासित होता है । तीसरे मामले में, एकमात्र मध्यस्थ को तारीख 4 दिसम्बर, 1993 को निर्देश किया गया था और मध्यस्थ द्वारा तारीख 23 फरवरी, 1996 को, अर्थात् 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् पंचाट किया गया था । तीसरे मामले में जो प्रश्न विरचित किया

गया था वह यह था कि जब कि 1996 के अधिनियम की धारा 85(2) के खंड (क) में "जब तक पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है, तो क्या पक्षकार 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व 1996 के अधिनियम के लागू होने के लिए करार कर सकते थे । अतः, इन सभी तीन मामलों में यह तथ्यात्मक स्थिति स्पष्ट थी कि माध्यस्थम् कार्यवाहियां, 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से काफी पहले प्रारंभ की गई थीं । इसलिए, 1996 के अधिनियम की धारा 85(2)(क) के बल पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निरसित अधिनियमितियों के उपबंध, जिसके अंतर्गत 1940 का अधिनियम भी है, ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में लागू बने रहेंगे । ये निष्कर्ष उक्त विनिश्चय के पैरा 29 और पैरा 42 से स्पष्ट होते हैं ।

15. तथापि, उच्च न्यायालय ने **थाइसेन** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के पैरा 35 में की गई कतिपय मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया । हमारी राय में, इन मताभिव्यक्तियों को उच्च न्यायालय द्वारा पूर्णतः संदर्भ से परे उद्धृत और अवलंबित किया गया है । पैरा 35 में इस न्यायालय ने इस संभाव्यता पर विचार किया था कि 1996 के अधिनियम की धारा 85(2)(क) के निबंधनानुसार, जब कार्यवाहियां 1940 के अधिनियम के अधीन प्रारंभ की गई हों तब पक्षकार 1996 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में करार कर सकते थे । इसके पश्चात्, इस न्यायालय ने इस विधिक स्थिति का कथन किया कि यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रारंभ नहीं हुई थी तो पक्षकार अपने करार द्वारा 1940 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में सहमत नहीं हो सकते थे । इस बात पर जोर देने का आशय था कि यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियां उस तारीख को प्रारंभ नहीं हुई थीं, जब 1996 का अधिनियम प्रवृत्त हुआ था, तो माध्यस्थम् कार्यवाहियों का कोई भी पश्चात्वर्ती प्रारंभ 1996 के अधिनियम के निबंधनानुसार होना चाहिए था । इन मताभिव्यक्तियों से किसी प्रकार से यह संकेत नहीं मिलता कि, यदि माध्यस्थम् कार्यवाहियां 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने तक 1940 के अधिनियम के अधीन प्रारंभ नहीं हुई थीं तो वे इसके पश्चात् प्रारंभ नहीं की जा सकेंगी । इन मताभिव्यक्तियों से केवल यह उपदर्शित होता है कि ऐसे मामलों में, 1940 के अधिनियम को लागू नहीं किया जा सकता है और हम यह बात दोहराते हैं कि वहां कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकता है ।

16. हमारे मतानुसार, सही दृष्टिकोण अनुकल्पी विवाद समाधान की

स्कीम को कार्यान्वित करने संबंधी उद्देश्य का संवर्धन करना होगा, जैसा **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में ठीक ही निवेदन किया गया है । इस निष्कर्ष पर पहुंचना अतिश्योक्तिपूर्ण होगा कि उसमें कोई भी माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । जैसा कि **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले से स्पष्ट होता है, 1996 के अधिनियम के लागू होने के प्रयोजनों के लिए जो कुछ तात्विक है वह पक्षकारों के बीच विवादों को माध्यस्थम् को निर्देशित करने का करार करना है । यदि ऐसा कोई माध्यस्थम् करार होता है जो कि 1996 के अधिनियम की धारा 7 की अपेक्षाओं को पूरा करता है और यदि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ हो गई है तो मामला पूर्णतः 1996 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगा । माध्यस्थम् करार में 1940 के अधिनियम के प्रति किसी निर्देश का कोई महत्व नहीं होगा और वह मामला पक्षकारों के मूलभूत आशय से संगत 1996 के अधिनियम के निबंधनानुसार ही माध्यस्थम् के लिए निर्देशित किया जाएगा, जैसा कि विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने संबंधी किए गए माध्यस्थम् करार से प्रत्यक्ष है ।

17. इस दृष्टि से उच्च न्यायालय का यह मत व्यक्त करना सही नहीं था कि प्रस्तुत मामले में बिल्कुल भी कोई माध्यस्थम् नहीं हो सकेगा । ऐसी स्थितियों में, जहां सुसंगत खंड में "भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों" के लागू होने के प्रति निर्देश किया गया है, जैसा कि **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में था, वहां धारा 85(2)(क) के बल पर उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों की बाबत, जो 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रारंभ नहीं हुई हैं, शासित करने वाले उपबंध केवल 1996 के अधिनियम के उपबंध ही होंगे । इसी तर्क के आधार पर यदि किसी ऐसे माध्यस्थम् करार में, जो कि 1996 के अधिनियम के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् किया गया है, लागू होने वाले उपबंधों के बारे में भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम या 1940 के अधिनियम के अधीन वाले उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया है तो ऐसा अनुबंध निष्प्रभावी होगा और मामला 1996 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन शासित होना चाहिए । 1940 के अधिनियम के लागू होने के बारे में किया गया गलत निर्देश या वर्णन संपूर्ण माध्यस्थम् करार को अविधिमान्य नहीं बना देगा । ऐसे अनुबंध को 1996 के अधिनियम की धारा 85 के प्रकाश में पढ़ा जाना होगा और हमारी राय में, ऐसे संबंध को शासित करने वाले सिद्धांत 1996 के अधिनियम के अधीन और उसके अनुरूप होने चाहिएं । जैसा कि पहले मत व्यक्त किया गया है, प्रस्तुत मामले में 1996 के

अधिनियम की धारा 7 में यथा-अनुबंधित "माध्यस्थम् करार" की अपेक्षाओं की पूर्णतः पूर्ति हो गई है और न ही ऐसा कोई सुझाव दिया गया है कि वह करार असम्यक् प्रभाव, कपट, प्रपीड़न या दुर्व्यपदेशन के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली किन्हीं परिस्थितियों के कारण दूषित हो गया है । इन परिस्थितियों में, प्रयास यह किया जाना चाहिए कि विवादों का अनुकल्पी विवाद समाधान प्रक्रिया द्वारा समाधान करने संबंधी पक्षकारों के आशय को आगे बढ़ाया जाए । अतः, उच्च न्यायालय ने पूर्णतः त्रुटि कारित की है ।

18. हमें यह भी अभिनिर्धारित करना चाहिए कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा **राजन कुमार वर्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण को प्रस्तुत विनिश्चय के प्रकाश में देखे जाने की आवश्यकता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय में **एम. एम. टी. सी.** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का उल्लेख नहीं किया गया है । इस न्यायालय द्वारा तारीख 14 दिसम्बर, 2005 के आदेश द्वारा 2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 25026 का संक्षिप्त निपटारा करने का यह अभिप्राय नहीं होगा कि जहां तक विधि संबंधी घोषणा का संबंध है, उसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की गई है (**कुन्हयाम्मद और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[1] तथा **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[2] वाले मामले देखिए) ।

19. अतः हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर करते हैं । इस मामले पर विचारण न्यायालय द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 8 के निबंधनानुसार कार्यवाही की जाएगी । पक्षकार, माध्यस्थम् करार को प्रभावशील बनाने के लिए तारीख 14 मई, 2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे ।

20. अपील उपर्युक्त निबंधनों में मंजूर की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

---

[1] (2000) 6 एस. सी. सी. 359.

[2] (1986) 4 एस. सी. सी. 146.